भौंरहा पीपर

लोक-रस-सिक्त बुंदेली काव्य-रचनाएं

डा. पूरनचन्द श्रीवास्तव

Scanned with OKEN Scanner

भौंरहा पीपर

रचनाकार—
डा० पूरनचन्द श्रीवास्तव

प्रकाशक—
मृदुल प्रकाशन
४७३, उपरैनगंज, (दीक्षितपुरा) जबलपुर

मुद्रक—
परिमल प्रिंटर्स, चेरीताल
जबलपुर

प्रथम संस्करण
फरवरी १९८४

मूल्य :
२० रुपये

Scanned with OKEN Scanner

भौंरहा पीपर

अनुक्रम

भौंरहा पीपर की घम छैंया : १
चले चलो रे छैल-छबीले : ४
बिसराम घरी भर कर लो जू : ६
कारी बदरिया उन आई : ८
पनघट पै की बातें : १०
जो मातो मन बड़ो अनारी : १२
गाड़ी ढड़कत चलै गांव की : १४
भोर भओ ईंगुरिया : २१
अकल-विकल हैं प्रान राम के : २३
नन्दलाल औ गुजरिया : २५
महताबी फागुनिया : २६
बरसै आज अँगन मोरे रंग हो : २८
सजन सलोने हे मन मोहन : २९
उठ धना भये पीत बादर : ३२
अरी कहां लौ समझाऊं : ३३
बासुदेव को कुंवर सांवरो : ३५
भैया मोरे हे परमवीर : ३७
झीम झपक निंदिया सें नोंनी : ४३
धरती में महिमा अमा गई : ४५
नओ भोर हो गओ अरे : ४७
रुख उनको अब ना मिलै : ५०
सुनो गुनो धरो मन : ५२
आंगन में हम परे हते : ५५
बदलें चलो समैया : ६५
चंदा लौं झलमल में : ६७
इतनइं कहबो है बहुत : ७१
पीपर बारो गांव हमारो : ७३

Scanned with OKEN Scanner

भौंरहा पीपर की घम छैंयाँ......

मैं पीपर को बिरछ, गाँव में अबलों एक खड़ो हों,
बहुत दिना भए बीरन सें–अकबर सें तनक बड़ो हों.

बड़ी डरैयाँ लाखन कनखा, लाखन के लाख-लाख पत्ता,
गीधन के दो सौ आठ घोंचुआ, डार-डार भौंरन छत्ता.

उम्मर की छोड़ो बात, जमानों देखो मैंने,
इतईं ढिंगा ती फुलबगिया, जित काँटे लाख लगे पैने.

रंग बिरंगी सदा सुहागन, गेंदन कितने भौंरा झूमें,
कितनी माती पखियारिन ने फूलन के ओंठ झपक चूमें.

कितनी बेर न रानिन को जी ई बगिया में झूलो,
कितनी बेर न राजा जी को मन हुलास में हूलो.

रही जमानों फिर गओ अब तौ, चौरस वारू बिनियाँ कंडा,
जुही मौलसिरि–हरसिंगार जित, लगे कितेकन झंडा.

हते जहाँ छत छानी हैं अब, घूरे मुलक डरे हैं,
टूटे पथरा फूटी मूरत, सिल लोढ़ा बने परे हैं.

Scanned with OKEN Scanner

अरुवा घुरकें ई घूरन पै, कोउ ग्रांतर में भन्नावै,
आधी रात हंड़ा इत खनकें, कोउ पथरा से सन्नावै.

आगी सी कोउ बार बुझाउत, कोउ चुरियाँ सी छनकावै,
ढुलक मंजीरा इत ग्रधरत्ता, जाने कौन बजावै.

कितनी बातें घोख गिनाहों, हिन्नी दै जातीं फेरो,
हल–हल प्रान कंपत हैं सबके—'दैया, गीध बसेरो !'

कितनों आदर पाग्रो मैंने महाराजा जू के द्वारे,
कितने बैरागी जती–सती ग्राए इत साँझ–सकारे.

ग्रब तौ करिया चैतू कुम्हार है ई खेरे को ठाकुर,
थानेदारन सें मिलजुर बो, खाय खबाए घी–गुर.

परमोला रतनसींग कारिंदा की पाँचउ अब घी में,
सक्कर–गुर को लगै उपटनों, सपरें दूध दही में.

पंडा बाबा छिरियाँ लैकें, नित जाग्रो करत पहारै,
ढारें महादेव मुरलीधर, चौथे पहर सकारें.

जिरिया दाई मंहतैन सयानी, दाँत घुरे से जी के,
मालगुजारन कक्को सबकी, दएं गुदनहा टीके.

पिपरहटा की भुम्म जिएं, लै कुटुब कबीलो सारो,
जेठ मास जैसो बीतत है, ऊंसइ बीतै बसकारो.

लरका खेलत गड़ा - गेंद, खिन्नी - मिन्नी घरघूला,
चलत धौंकनी नित लुहार की, बखरें चलें बसूला.

गरमी के दिन जैसइ आवें, जायं गौंतरी करवे,
सरी डुकरियाँ जायं पिरागै, गंगाजू में तरबे.

जाँय बसंतन, बाँदकपुर सब गाउत गीत उमाहे.
जब - तब जावें गंग अन्हावे तीरथिया गढ़वाहे.

गयाधाम जावें कोउ - कोऊ, पुरखन पार लगावे,
पांच पंडवा से कोउ चलदें, मेरु प्रभा खों पावे.

कासी जगन्नाथ हरद्वारे, सतुवा बाँध पिठैंयाँ,
जावें, बदरीधाम कितेकउ, छुटकैंयाँ - बड़कैंयाँ.

बनफती, मकुइया, चार - चिरौंजी काँके - महुआ खावे,
बड़े - बड़े मुखिया आउत हैं, गांधीराज बतावे.

पीपर बारे गाँव भौंरहा पीपर की घम - छैंयाँ,
सात घाट को पानी पीकें लौटो करती गैयाँ.

पाउंन पाइल रुन - झुन रुन - झुन, भर गईं भाँवरें रानी,
'जै बसुदेवा'—गई बात, अब बरम - भूत की बानी.

तब माँगे औलाद उमाँहीं, आँचर छू - छू छाया,
अब घट बंधें बरस में पन्द्रा, धरम - करम की माया.

ऐन दिवारी की अंधियारी आकें नटखट बारे,
लै - लै खप्पर मंतर फूंके, चाँउर उरदा कारे.

शुक्रवारी होय रोहनी, परै ग्रिहन जो ऊ दिन,
धरें मूड़ पै उरद जगाए, जा पहुंचें महलन छिन.

ऐसी बातें चलन लगीं अब, हू है बड़ों पुथन्नों,
ईसें थोड़ई भीत जान लो, ना पल्टौ अब पन्नो.

अइयो ई तरपी जो भूले, संग मिसरा - सुकला के,
मोरी दीन कथा छपवइयो, आँगे तनक चलाके.

जो लोक का प्रत्यक्ष दर्शन करता है, लोक जीवन में प्रविष्ट होकर स्वयं उसे अपने मन: चक्षुओं से देखता है, वही मनुष्य उसे पूरी तरह समझता-बूझता है। केवल पुस्तकस्थ विद्या से लोक तत्व का तल स्पर्शी परिचय प्राप्त नहीं किया जा सकता।

— डा० वासुदेवशरण अग्रवाल

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८ सितम्बर १९६०

जो चीजें लोक चित्त से सीधे उत्पन्न होकर सर्व साधारण को आंदोलित, चालित और प्रभावित करती हैं, वे ही लोक साहित्य, लोक नाट्य......आदि नामों से पुकारी जाती हैं। लोक चित्त से तात्पर्य उस जनता के चित्त से है, जो परम्परा प्रथित बौद्धिक, विवेचनापरक शास्त्रों और उन पर की गई टीका-टिप्पणी के साहित्य से अपरिचित रहता है।

— श्रीकृष्णदास

सम्पादक 'नया पथ' लोक साहित्य विशेषांक

लोक मानस गीतों को जन्म देते समय उन्हीं भावों से स्पंदित हुआ है, जिनसे कालिदास और भवभूति हुए थे। यह ठीक उसी तरह, जिस तरह कि घास और बांस प्रकृति के एक ही महकमें से सम्बन्ध रखते हैं।

— हजारीप्रसाद द्विवेदी

विचार और वितर्क

मुद्रक : परिमल प्रिन्टर्स, चेरीताल, जबलपुर

प्रकाशक : मृदुल प्रकाशन, ४७३-उपरैनगंज

दीक्षितपुरा, जबलपुर

Scanned with OKEN Scanner